'इष्टोपदेश' हितकारी उपदेश। मुनि दिगम्बर पूज्यपाद स्वामी हैं, उन्होंने कहा है। पहले ऐसा हुआ, उसका अर्थ कि यह आत्मा पहले शास्त्र से जानना चाहिए कि इस लोकालोक को जाननेवाला यह आत्मा है। लोकालोक अस्ति है न? वस्तु, वस्तु है – ऐसा जाननेवाले के बिना यह वस्तु है – ऐसा किसने कहा? समझ में आया? यह लोक और यह अलोक है। उसे जाननेवाला ज्ञान है। ज्ञानस्वभाव आत्मा है, वह लोकालोक का जाननेवाला है – ऐसा इसे पहले निर्णय करना चाहिए। वह शरीरप्रमाण है, अपने शरीरप्रमाण है। वह ऐसे सर्वत्र व्यापक नहीं है। ऐसे नित्य है, कायम वह की वह चीज़ नित्य रहती है और अनन्त आनन्दमय है, सुखवाला तत्त्व है और स्वसंवेदनस्वरूप है, वह स्वयं अपने से जाना जा सके, ऐसा ही वह आत्मा है। उस आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि वह स्वसंवेदन आत्मा आनन्दमय और ज्ञानमय स्वयं से स्वयं वेदकर जाना जा सकता है, ऐसा उसका तत्त्व है। कोई निमित्त से या राग की मन्दता के भाव से वह ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। समझ में आया? उपदेशक के उपदेश से ज्ञात हो, ऐसा वह आत्मा नहीं है।

मुमुक्षु : सबका खण्डन हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका खण्डन है, परन्तु यह तो वापस अपने अज्ञान के खण्डन की अन्तिम बात है। ऐसा कि दूसरे बहुतों को हम समझावें तो अपने को कुछ लाभ हो, ऐसा स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? दूसरों को समझाने का विकल्प है, वह तो

पुण्यबन्ध का कारण है; आत्मा को लाभ का कारण नहीं, क्योंकि स्वयं उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं, उसके कारण बिल्कुल है नहीं। क्या कहना है तुम्हारे? अपना ज्ञान और आनन्द स्वयं स्वतः स्वरूप है, अर्थात् स्वतः स्वभावी स्वतः से ही वेदनकर अनुभव किया जा सकता है। बिल्कुल किसी की अपेक्षा है नहीं, ऐसा यह आत्मा है। समझ में आया?

यहाँ पर किसी की यह शंका है कि प्रमाणसिद्ध वस्तु का ही गुणगान करना उचित है। देखो! शिष्य का प्रश्न है कि जो वस्तु प्रमाण से साबित हो, प्रमाण से सिद्ध हुई हो, प्रमाण से उस वस्तु की सिद्धि ज्ञान में आयी हो, उसका गुणगान करना चाहिए। जो चीज़ प्रमाण से ख्याल में नहीं आयी, उसका गुणगान क्या? समझ में आया? **प्रमाणसिद्ध वस्तु का...** प्रमाण से, ज्ञान से ऐसे सिद्ध / साबित सत्ता (हुई हो), यह है – ऐसा यदि सिद्ध हुआ हो, तो **गुणगान करना उचित है।**

परन्तु आत्मा में प्रमाणसिद्धता ही नहीं है... शिष्य का प्रश्न है। आत्मा में प्रमाण की सिद्धता ही नहीं है। प्रमाण से वह आत्मा किस प्रकार सिद्ध होगा? **वह किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं है।** किसी प्रमाण से आत्मा का भान हो सके, ऐसा वह है नहीं – ऐसा हमें लगता है। वह तो अरूपी ज्ञानघन है। वह किस प्रकार अपने को किसी प्रमाण में आवे? – ऐसी शिष्य की शंका है।

तब ऊपर कहे हुए विशेषणों से किसका... शिष्य प्रश्न करता है, तुमने ऊपर कहा कि ऐसा लोकालोक का जाननेवाला, अनन्त सुखस्वरूप, शरीरप्रमाण, नित्य और ऐसा-ऐसा (आत्मा है), ऐसे गुणगान (किये) परन्तु किसके? प्रमाण में आये बिना किसके गुणगान? **विशेषणों से किसका और कैसा गुणवाद?** ये विशेषण जो कहे, वे किसके? और किसके विशेषण? प्रमाण में आये बिना किसके? समझ में आया? और किसके गुणवाद? **ऐसी शंका होने पर आचार्य कहते हैं कि वह आत्मा 'स्वसंवेदन-सुव्यक्त है,'...** देखो! पहला शब्द आया। इस श्लोक में जो था न मूल? **'स्वसंवेदन-**

सुव्यक्त है,'... यह आत्मा स्वयं से वेदन किया जा सकता है, जाना जा सकता है, ऐसा ही उसका स्वभाव है। सुव्यक्त ऐसा ही उसका प्रगट स्वभाव है। समझ में आया?

स्वसंवेदन नामक प्रमाण के द्वारा... प्रमाण यह है, यह प्रमाण है। अपने आत्मा को जानने का स्वसंवेदन स्वयं यह आत्मा है। ऐसे ज्ञान द्वारा ज्ञेय करके ज्ञाता आत्मा और ज्ञेय स्वयं-ऐसे अन्दर जानकर प्रमाण से सिद्ध होने योग्य तो इस प्रकार से है। समझ में आया? **स्वसंवेदन नामक प्रमाण के द्वारा अच्छी तरह प्रगट है। अच्छी तरह प्रगट है।** बराबर प्रगट है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्यज्योति है। चौदह ब्रह्माण्ड में अपना भिन्न तत्त्व, लोकालोक को जाननेवाले स्वभाववाला तत्त्व अपने ज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा वह प्रगट आत्मा है। कहो, समझ में आया इसमें?

उसका आधार देते हैं। **'वेद्यत्वं वेदकत्वं च।' 'जो योगी को खुद का वेद्यत्व व खुद के द्वारा वेदकत्व होता है, बस, वही स्वसंवेदन कहलाता है।** क्या कहते हैं? जो धर्मी जीव को.. योगी अर्थात् आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध, लोकालोक का जाननेवाला, अनन्त सुखस्वरूप, शरीरप्रमाण, नित्य है। ऐसे आत्मा के अन्तर में एकाग्र होनेवाले। योगी अर्थात् उसमें जुड़ान करनेवाले। पुण्य और पाप के राग तथा संयोगों का लक्ष्य का जुड़ान छोड़कर और स्वरूप शुद्ध चैतन्यधाम अनाकुल आनन्दकन्दस्वरूप है, उसमें जिसने जुड़ान—अन्तरयोग जोड़ा है, ऐसे धर्मी को खुद का वेदत्व खुद / स्वयं ही ज्ञेय है और **खुद के द्वारा वेदकत्व..** स्वयं के द्वारा ज्ञाता भी स्वयं और **खुद के द्वारा वेदकत्व..** अर्थात् ज्ञेय और खुद के द्वारा वेदकत्व अर्थात् ज्ञाता। वह जाननेवाला भी स्वयं और ज्ञेय-ज्ञात होने योग्य भी स्वयं। सूक्ष्म बात है यह।

स्वयं, स्वयं से ही ज्ञात होने योग्य है। यह ज्ञेय भी स्वयं और ज्ञाता भी स्वयं। जाननेवाला ज्ञाता और ज्ञेय स्वयं। स्वयं को स्वयं ज्ञेय और स्वयं अपना ज्ञाता। आहाहा! समझ में आया? राग ज्ञेय और आत्मा ज्ञाता-ऐसा भी नहीं और राग जनवानेवाला और आत्मा जाने, ज्ञेय, वह जनवानेवाला ज्ञाता को वह ज्ञेय हो, ऐसा भी नहीं। क्या कहा? जरा समझ में आया? भगवान आत्मा... ऐसे राग भाग है, वह आत्मा को जनाने में सहायता करे, ऐसा नहीं तथा राग उसे जान सके या राग का आत्मा ही ज्ञेय करे तो आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : तो राग गया कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग, आत्मा में है ही नहीं। ज्ञेय-ज्ञायक में राग है ही नहीं। समझ में आया? आहा! जानने में आने योग्य भी आत्मा और जाननेवाला भी आत्मा। यहाँ तो जाननेयोग्य रागादि ज्ञेय, ऐसा भी नहीं, भाई! ऐसा इतना सिद्ध करना है। रागादि जाननेयोग्य, ऐसा भी नहीं, शरीर आदि जनाने (योग्य), वह नहीं, वह वस्तु नहीं।

भगवान आत्मा स्वयं का स्वरूप ही इतना है कि स्वयं ही अपना ज्ञाता हो और स्वयं ही अपना ज्ञेय हो। लोकालोक का जो ज्ञेय है, वह तो दूसरी अपेक्षा से बात की है। उस लोकालोक को जानने जितना यहाँ स्वभाव है, ऐसी की बात है। समझ में आया? लोकालोक ऐसे नहीं। लोक और अलोक जितना अस्तित्व है, उस अस्तित्व की मौजूदगी के ज्ञानवाली मौजूदगी उसे जाने। उसके बिना यह अस्तित्व है-ऐसा जाना किसने? समझ में आया? वह अपना ज्ञान इतना है, ऐसा। लोकालोक के कारण से नहीं। ज्ञानस्वभाव, जिसका 'ज्ञ' स्वभाव-जानकस्वभाव, वह स्वभाव ही स्वयं लोकालोक को जानने जितना वह अपना स्वयं का स्वरूप है। समझ में आया? आहा!

शिष्य कहता है, परन्तु जो वस्तु प्रमाण में आये बिना किसके गुणगान? किसके विशेषण? किसके (विशेषण) दिये तुमने ये सब ऐसे? इतना बड़ा, इतना बड़ा और ऐसे गुण, इतना बड़ा और ऐसे गुण। ऐई! परन्तु किसके? कोई प्रमाणसिद्ध वस्तु हुई हो, उसके या उसके बिना? सुन न! स्वयं से प्रमाणसिद्ध होने के योग्य आत्मा है। धर्मी जीव को.. योगी अर्थात् धर्मी। योगी अर्थात् वे बाबा-बाबा घूमते हैं, वे योगी नहीं।

भगवान आत्मा एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में लोकालोक जानने का जितना ज्ञान धराता है, अपने में, हों! अनन्त आनन्द है, शरीरप्रमाण है, नित्य है। वह स्वसंवेदन से अपने ही प्रमाणज्ञान से प्रमेय हो सके; अपने ही प्रमाणज्ञान से अर्थात् ज्ञान कहो या प्रमाण कहो और ज्ञेय कहो या प्रमेय कहो। अपने ही प्रमाण से स्वयं प्रमेय अर्थात् ज्ञेय हो सकता है। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु है या नहीं? वस्तु। वस्तु है, उसमें तो ज्ञानस्वभाव है। लोकालोक को जाने, इतना ज्ञानस्वभाव है और उसमें आनन्दस्वभाव है। जो स्वभाव है, वह स्वयं ज्ञाता होकर अपना ज्ञेय करके जानने के योग्य स्वभाव है। दूसरे को ज्ञेय करे और ज्ञात हो या दूसरे का

ज्ञाता तो दूसरा हो सकता नहीं, परन्तु दूसरे को ज्ञेय करे और इसका ज्ञाता हो, ऐसा नहीं है। स्व का ज्ञेय और ज्ञाता होने का उसका (आत्मा का) वास्तविक यथार्थ स्वभाव है। आहाहा!

बात यह है कि ये सब हड्डियाँ-बड्डिया-चमड़ा यह तो सब जड़ है, मिट्टी, धूल है। उनका जाननेवाला है। उनका जाननेवाला अर्थात्? उनका जो स्वरूप है, वैसा जानने का स्वरूप अपने ज्ञान में है। उनके कारण नहीं। इसका ज्ञानस्वभाव ऐसा है। जगत में लोकालोक है, उसमें एक जाननेवाला ज्ञान अपने स्वभाव के सामर्थ्यवाला न होवे तो 'यह है'-ऐसा किसने कहा? इसलिए इसके कारण (हैं, ऐसा) नहीं। यह जो सत्तावाला है-अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु हैं, उनके कारण नहीं, परन्तु वह सत्ता है, ऐसी यह एक सत्ता लोकालोक के जानने के स्वतः स्वभाववाला पूरा ज्ञान और आनन्दस्वरूप स्व सत्ता है। आहाहा! समझ में आया? पर को ज्ञेय करना नहीं और पर का जाननेवाला होना नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! यहाँ तो कहे परन्तु कितनी क्रियाएँ बाहर की! पोपटभाई! यह कौन करे क्रिया? वह तो उसके कारण बाहर का (होता है)। यह तो स्वयं अपना ज्ञाता और स्वयं अपना ज्ञेय, यह समा जाए, ऐसा इसका स्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल भी कहाँ लिया है? हीरा तो बहुत ऊँचा (कीमती) परन्तु इसने नजर कहा की है? कहो, नजर किये बिना आँखें बन्द करके? बहुत (ऊँचा) हीरा, बहुत ऊँचा, बहुत ऊँचा अरे! उसका तेज और इसका तेज!! परन्तु किसका तेज!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ करता है? कहता ही नहीं वास्तव में तो। यही कहते हैं कि यहाँ प्रमाण से सिद्ध होनेयोग्य वस्तु इस प्रमाण से सिद्ध होती है, दूसरे किसी प्रकार से साबित हो, वह वस्तु नहीं है। इसने प्रमाण कब किया है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

बाहर की प्रवृत्ति की क्रियाएँ तो स्वतन्त्र जड़ की (होती है), उन्हें जानना, वे ज्ञेय है-ऐसा भी यहाँ तो नहीं है। आहाहा! यह तो जो जगत का लोक और अलोक महासत्तास्वरूप

हो, परन्तु उसे जाननेवाली सत्ता स्वभाव मेरा ज्ञान ही इतना है। लोकालोक को अर्थात् 'ज्ञ' स्वभाव है। 'ज्ञ' स्वभाव है, उसका सत्व ही इतना है कि जितना जगत में सत्व है, उसे स्पर्श किये बिना, उसका लक्ष्य किये बिना, उस सत्ता की उपस्थिति है, इसलिए नहीं। समझ में आया? उस सत्ता की मौजूदगी इतनी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान ज्ञान अन्तर ज्ञान वस्तु के प्रमाण से वह स्वयं ही प्रमेय होता है। वह प्रमेय होता है, वह ज्ञेय होता है और वह ज्ञाता (होता है)। वह स्वयं ज्ञेय और ज्ञाता है। पर, ज्ञेय और आत्मा, ज्ञाता– यह सब व्यवहार की बातें हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही पक्षी। बराबर सत्य का एक पक्षी चुकादा होवे न? दो का चुकादा अच्छा होगा? तू भी सच्चा और तू भी सच्चा – ऐसा होगा वहाँ? एक सत्य पक्षी चुकादा है। आहाहा!

कहते हैं कि धर्मी जीव को... धर्मी ने स्वयं ज्ञान को ज्ञेय बनाकर अथवा ज्ञान से ज्ञेय बनाकर अपना प्रमाण सिद्ध किया है। प्रमाण सिद्ध किया है कि यह आत्मा। किसी के प्रमाण से नहीं, किसी के आश्रय से नहीं, किसी के सहारे नहीं, किसी के द्वारा नहीं, किसी ने कहा कि ऐसा (आत्मा), इसलिए (प्रमाण किया है)–ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा ही उसका स्वभाव है। अभी कहेंगे, समझ में आता है?

स्वसंवेदन नामक प्रमाण के द्वारा अच्छी तरह प्रगट है। अनुमान भी नहीं। समझ में आया? परोक्ष नहीं। ओहोहो! भगवान आत्मा चैतन्य का सूर्य प्रभु, लोकालोक जितना है, उसे स्पर्श किये बिना, लक्ष्य किये बिना, उसका लक्ष्य किये (बिना) इसका स्वभाव ही लोकालोक को जानने का स्वभाव है। उस स्वभाव को जाननेवाले को किसी की अपेक्षा है नहीं। समझ में आया? गजब बात लगे! बाहर की बात समझ में आये, लो! सामायिक करो, प्रौषध करो। ए.. भगवानभाई! समझ में आये अज्ञान, अज्ञान, हों! वहाँ कहाँ भान था कुछ? ए.. मूलचन्दभाई! प्रौषध कर डाले। स्थूल शरीर हो और रात्रिभोजन न करे उसमें क्या वहाँ व्यवधान? जरा इतना सूखे तो और तीन लड्डू चढ़ा जाये वापस। चना पोचा हुआ हो तो वापस पानी में डाला थोड़ा। उसमें कुछ है? वह भी धर्म कब था।

सुन न! ऐ.. देवशीभाई! तब इतना अलग नहीं था, ऐसा (ये) कहते हैं। तब इकट्ठा हो गया। अरे! विद्यमान को अविद्यमान करे। अनुभव प्रकाश में नहीं आया?

मुमुक्षु : ऐसा सुना हुआ नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं था। बात सत्य, बात सत्य। एक पिता हो, बाजार में बाहर निकला और लड़के घर में रहे। उसे पूछे कि तुम्हारे लड़के हैं? तो इनकार करेगा? साथ में नहीं न? साथ में नहीं न? साथ में नहीं अर्थात् घर में पड़े हैं या बैठे हैं या नहीं? विद्यमान को अविद्यमान करे? अनुभव प्रकाश में ऐसा दृष्टान्त दिया है। समझ में आया? विद्यमान को अविद्यमान करे? इसी प्रकार भगवान विद्यमान ज्ञानस्वभाव पूर्ण लोकालोक की अपेक्षा रखे बिना लोकालोक को जानने के स्वभाव का सत्व है। ऐसा भगवान अन्दर है, उस विद्यमान को अविद्यमान कौन करे? समझ में आया? वयोवृद्ध अकेला सब्जी लेने बाहर निकला हो। घर में यहाँ काम न हो। बापू! तुम्हारे कोई लड़का नहीं? तो वह इनकार करेगा? लड़का नहीं, ऐसा कहेगा? बापू! लड़के तो आठ हैं, बड़े लोहे जैसे, परन्तु काम करते हैं अभी। लड़की का ससुर सब लेकर आया है और वह है जरा सत्ता प्रिय। इसलिए उसको सामने सम्हालने के लिये वहाँ रुके हैं। पोपटभाई! सत्ता प्रिय हो, जरा कड़क हो और वह सामने ठीक से न सम्हाले तो... हो जाये। यह दुनिया कोई पागल है न परन्तु...

यहाँ कहते हैं कि भगवान विद्यमान को अविद्यमान कहे कौन? घर में लड़के पड़े हैं, और साथ में नहीं हैं, इसलिए नहीं हैं, ऐसा कहे वह? इसी प्रकार भगवान आत्मा एक समय में अखण्डानन्द लोकालोक को जाननेवाला तत्त्व और पूर्णानन्दवाला तत्त्व है। वह नहीं है - ऐसा कौन कहे? कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही प्रमाण हुआ। यह प्रमाण तब ही प्रमाण कहलाया। यह अपना ही प्रमाण है, ऐसा कहते हैं। किसी के प्रमाण की इसे आवश्यकता नहीं है। यह अपने गुण को गाया, ऐसे गुण और ऐसे गुण और ऐसा है, यह ज्ञान द्वारा जाना, यही उसका प्रमाण है, दूसरा कोई प्रमाण है नहीं। धर्मी को वह अपना ही प्रमाण है, दूसरे का प्रमाण उसे है नहीं। भगवान कहते हैं, इसलिए माना, ऐसा भी नहीं है - यहाँ तो ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ ने कहा, इसलिए यह माना है, ऐसा नहीं है। भाई! अपने से वेदन किया है, जाना है कि

यह आत्मा ऐसा है। ओहो! अकेला चैतन्य का पुंज और वह ज्ञेय तथा ज्ञान दोनों मैं ही हूँ। दूसरी चीज़ मेरी अपेक्षा से जगत में नहीं है। ऐसा है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह होवे (तो) उसके घर में। उसके कारण मैं नहीं, उसके कारण मेरा ज्ञान नहीं। उसके कारण मेरी सत्ता तो नहीं परन्तु उसकी सत्ता है इसलिए मेरा इतना ज्ञान है, ऐसा नहीं - ऐसा यहाँ कहते हैं। १९ गाथा लेने के बाद यहाँ से कैसी गाथा ली, देखो!

भाई! प्रभु ऐसे विद्यमान है न बड़ा! आहाहा! छह-छह लड़के बड़े गोरे (अंग्रेज) जैसे छह-छह हाथ के लम्बे और निरोगी शरीर (हो), रोग आया न हो, रोग आने की तैयारी न हो, ऐसे घर में बैठे हों और इनकार करे कि मेरे लड़के नहीं हैं। मूर्ख है न वह? कहे कोई? इसी प्रकार भगवान पूरी दुनिया के छह द्रव्य लोक में पड़े हैं, उन्हें लक्ष्य किये बिना, उन्हें स्पर्श किये बिना, उनकी अस्ति है, इसलिए इसकी अस्ति है, ऐसा नहीं-ऐसा भगवान अन्तर एक समय में पूर्ण जानने के स्वभाववाला पूरा तत्त्व है। वह स्वयं ही अपने प्रमाण से ज्ञेय करके स्वयंसिद्ध हो सकता है। उसे दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

बस, वही स्वसंवेदन कहलाता है। अर्थात् उसी को आत्मा का अनुभव व दर्शन कहते हैं। लो! उसे आत्मा का अनुभव अथवा दर्शन कहने में आता है। यह स्वसंवेदन कहो, अनुभव कहो, सम्यग्दर्शन कहो या जो कहो वह यह है। समझ में आया? बाद में कहेंगे, हों! ये सब व्यवहार के विकल्प और साधन-फाधन वहाँ बिल्कुल काम नहीं आते। यह बाद में कहेंगे। विकल्प आदि भले हो, वहाँ आत्मा के साधन में वे जरा भी काम नहीं आते। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! स्वयं कैसा ज्ञानचन्द्र है, कहते हैं देखो! आहाहा!

जिसका स्वभाव, जिसका स्वरूप, स्व-रूप, स्व-रूप, अरूप-स्वरूप, जिसका सत्व, जिसका स्वभाव इतना है, उसे दूसरे के प्रमाण से माननेयोग्य कहाँ रहा? वह तो अपने ज्ञान के वेदन से ज्ञान, ज्ञाता से ज्ञेय हो सकने के (योग्य), स्वयं ज्ञेय होने के योग्य

और स्वयं ज्ञान, ज्ञाता होने के योग्य, ऐसा उसका स्वभाव है, कहते हैं। आहाहा! व्यवहारवाले को भारी कठिन लगे, हों! यह व्यवहार भगवान का यह करे तो हो, यह करे तो हो, मन्दिर बनावे, पूजा करे, भक्ति करे, यात्रा करे.. धूल भी नहीं होता, सुन! कहते हैं। ऐई! अभी इन्हें मन्दिर बनाना है न बाकी? पाँच-दस लाख का मन्दिर बनाकर यात्राएँ निकालीं, उससे आत्मा बिल्कुल ज्ञात नहीं होता, ले! ऐसा कहते हैं। आहाहा! गले उतारना भारी। और वापस निकाले... हिम्मतभाई भी वे साथ में थे या नहीं वहाँ? आहाहा!

उस विकल्प के काल में भी विकल्प के कारण ज्ञान नहीं और ज्ञाता नहीं। विकल्प के कारण ज्ञाता और ज्ञेय नहीं। विकल्प के सहारे ज्ञाता और ज्ञेय नहीं। तब ही उसको- अवस्तु को व्यवहार कहा जाता है न? उसमें कहाँ वह वस्तु थी? वह तो ज्ञाता और ज्ञेय स्वयं वह वस्तु। रागादि अवस्तु। वह है, इसलिए इतना ज्ञान है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसके स्वभाव का माहात्म्य ही इसे नहीं आया। समझ में आया? भले भाषा में कदाचित कहे कि ऐसा आत्मा। परन्तु यह वस्तु.. ओहोहो! साक्षात् परमेश्वर स्वयं! स्वयं ही परमेश्वर स्थाप आत्मा को। स्थापित किये बिना तेरी ज्ञानदशा हाथ नहीं आयेगी। मैं ही परमेश्वर हूँ। ओहोहो! समझ में आया? अनुभवप्रकाश में कहते हैं न? स्वयं को प्रभु स्थाप! यदि कहीं प्रभुता दी तो ऐसे जा नहीं सकेगा, ऐसा कहते हैं। यदि कहीं महत्ता दी राग को और पुण्य को, व्यवहार को और निमित्त को तथा संयोग को (तो) अन्दर नहीं आयेगा। अन्दर आत्मा में नहीं आ सकेगा, आत्मा ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐ.. पोपटभाई! कहते हैं, सम्मेदशिखर की पाँच यात्रा करें तो एकावतारी हो जायेंगे। तूने पर को महिमा दी है। तेरा यह आत्मा हाथ नहीं आयेगा। ऐसा है नहीं वह। आहाहा!

भाई! वस्तु ही स्वयं अलौकिक है। लौकिक पूरे जगत को जाननेवाला लौकिक का आश्रय लिये बिना जाननेवाला ऐसा ही स्वयं तत्त्व है। स्वतःसिद्ध तत्त्व है। वस्तु है, उसे उसके स्वभाव की क्या बात करनी! उसके स्वभाव की हद क्या? उसे मर्यादा क्या? उसे पराश्रयता क्या? समझ में आया? जो स्वभावभाव है, उस स्वभावभाव को पराश्रय का क्या? अपूर्णता क्या? उस स्वभाव की अचिन्त्यता में अपूर्णता क्या? आहाहा! अब (लोग) शोर मचाते हैं। भगवान को, भगवान को... तुमने नहीं पढ़ा होगा, पढ़ा? पण्डित हमारे हैं

तो कभी तर्क दे। भगवान को तुमने सिद्ध कर दिया, भगवान महावीर को भगवान सिद्ध कर दिया, मानव को भगवान सिद्ध कर दिया। जैन सन्देश में ऐसे लेख आते हैं। अरे! वह तत्त्व का अनादर करनेवाला है। एक-एक चैतन्यतत्त्व का खून करनेवाला है। समझ में आया?

भगवान आत्मा साक्षात् स्वयं परमेश्वर का रूप ही आत्मा है। शक्ति और भगवान की व्यक्ति में कुछ अन्तर नहीं है। ऐसे प्रभु आत्मा को जब तक दृष्टि में स्थापित न करे, तब तक उसका स्वसंवेदन प्रमाण नहीं हो सकता। समझ में आया? कहीं भी यदि जरा लार (लान्तरे), कहीं माहात्म्य दे दिया तो इस माहात्म्य में खण्ड होता है। माहात्म्यवाला तत्त्व हाथ नहीं आयेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भाई! ऐसा कहते हैं कि उतर जाये ऐसा है। चक्कर उतर जाये ऐसा है। तुम ऐसे बोले और वह ऐसे बोले। आहाहा!

तू कितना है, कैसा है, यह तुझे खबर नहीं? यह लगायी सबकी धूल की और शरीर की और वाणी की और यह भगवान ऐसे और भगवान ऐसे! परन्तु तू कितना, यह खबर है तुझे? भाई! भगवान की क्या बात करना! सुन न अब! उन भगवान को जिसने ज्ञान में लिया, उस ज्ञान की महिमा तेरे कारण है या उनके कारण है? जिसने केवलज्ञान और केवलदर्शन ऐसा.. ऐसा.. ऐसा.. ऐसा.. आहाहा! जो पर्याय ख्याल में ली, उस पर्याय की महिमा कितनी और उस पर्याय की अपेक्षा पूर्ण द्रव्य की महिमा कितनी? आहाहा! है (महिमा) ऐसे (और) देता है ऐसे; इसलिए दृष्टि में अन्तर है। ज्ञानचन्दजी! शोर मचाते हैं। वे कहें, अरर र! व्यवहार का लोप होगा। व्यवहार का लोप ही है। आत्मा में कब व्यवहार था? सुन न! ऐ.. बसन्तलालजी! ये सब निकले हैं न, देखो! शिक्षणवर्ग के लिये और अमुक के लिये। यहाँ कहते हैं कि कुछ नहीं मिले आत्मा में। पर से समझे, ऐसा आत्मा नहीं और पर को समझावे, ऐसा वह आत्मा नहीं। ऐई!

मुमुक्षु : यह साधन-साध्य कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन, यही साध्य यह का यही। यह का यही साधन और यह का यही साध्य। दूसरा था कब? दूसरा कहे उसे सुनावे न जब.. आहाहा! समझ में आया इसमें?

जिस प्रकार यह वस्तु स्व, स्वस्वभाव से जिस प्रकार स्वत: है और स्वत: स्वभाव

के प्रमाण से ही जानी जा सके ऐसी है। ऐसा जब तक इसके ख्याल में, रुचि में, श्रद्धा में न बैठे, वहाँ तक इसका वीर्य स्वसंवेदन अन्तर में झुकेगा नहीं। समझ में आया? इतना यह नहीं, इस प्रकार से मानकर इसे निर्णय करने जाये (तो) वेदन किसी प्रकार नहीं हो सकेगा? समझ में आया इसमें? इसका नाम आत्म अनुभवदर्शन है।

अर्थात् जहाँ आत्मा ही ज्ञेय और आत्मा ही ज्ञायक होता है,.. देखो! जहाँ **आत्मा ही ज्ञेय..** स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञेय। परज्ञेय तो व्यवहार हो गया। वह नहीं। निश्चय स्वयं ज्ञेय और **आत्मा ही ज्ञायक होता है,..** देखो! **चैतन्य की उस परिणति को स्वसंवेदन प्रमाण कहते हैं।** यह प्रमाण। चैतन्य की उस परिणति अर्थात् पर्याय को स्वसंवेदन प्रमाण कहते हैं। पर्याय की बात ली न? भगवान आत्मा ज्ञेय, ज्ञात होनेयोग्य और स्वयं जाननेवाला। जाननेवाला और जनानेयोग्य स्वयं का स्वयं है।

बहिर्मुख की वृत्ति में बहिर्बुद्धि में जितना माहात्म्य पर का रह जाता है, उसे बहिर्बुद्धि कहते हैं। समझ में आया? और अन्तरज्ञेय तथा ज्ञायक परिपूर्ण प्रभु मैं ही इस स्वभाव के वेदन को करनेवाला वेदन, दूसरा किसी को ज्ञात होनेयोग्य भी मैं और जाननेवाला भी मैं, ऐसी परिणति को स्वसंवेदन प्रमाण कहते हैं, इसका नाम प्रमाण है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है कि '**जदि दाएज्ज पमाणं**'। यदि कहूँ तो प्रमाण करना। वह यह प्रमाण। (समयसार) पाँचवीं गाथा में आता है न? '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज**' दिखाऊँगा तो प्रमाण करना। तेरे स्वसंवेदन प्रमाण से प्रमाण करना। यह महाराज भगवान कुन्दकुन्द कहते हैं, (इसलिए प्रमाण है) ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**जदि दाएज्ज**' यदि मैं दिखाऊँ तो प्रमाण करना, हों! अर्थात्? तेरे अनुभव से उसका स्वीकार (करना)। चैतन्य ऐसा है, ऐसे स्वसंवेदन से स्वीकार करना। आहाहा! समझ में आया? चिमनभाई! क्या करना इसमें? मकान बनाना, मन्त्रीपना करना? यह सब कितने काम सिर पर? चूने का व्यापार करना। थैलियाँ (भरना) दूसरे का चूना देखकर इसका चूना देखकर विचारे। यहाँ चूने का ट्रक आता है और इसकी चूने की थैलियाँ देखी। यह गये थे न? कल-परसों नहीं? थैलियाँ, थैलियाँ.. परन्तु उसका धन्धा करे तो अच्छी ही थैलियाँ लावे न यह तो। ऐसा कुछ नाम दिया था। वे थैलियाँ पड़ी थीं। यहाँ थैलियाँ नहीं रहतीं। यहाँ कहाँ थैलियाँ थीं? यहाँ तो... साधारण,

साधारण वापस। घर का माल बेचे वह अच्छा-अच्छा ले या नहीं ? इसी प्रकार इस घर का माल आत्मा आनन्दकन्द है, कहते हैं। आहाहा! थैलियाँ पड़ी हैं। मैंने कहा, किसकी थैलियाँ हैं ? यह सब चिमनभाई की हैं। पत्थर और .... मकान के लिये लो न, ऐसा करके।

घर का व्यापार, इसलिए चूना दूसरे प्रकार का लाये। यह घर का व्यापार आत्मा का, यह कहते हैं यहाँ। भगवान तेरे अन्तर के प्रमाण के लिये, किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। घर का माल पड़ा है और घर में माल पड़ा है और उसे तू प्रयोग नहीं करेगा ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! दुनिया में ऐसा नहीं कहते ? अपने घर में है और अपने किसलिए लेने जाना ? पोपटभाई! ऐसा है या नहीं ? इतना तो अपने घर में माल पड़ा है, वह तो पहले प्रयोग करो और फिर घटे तो अपने लायेंगे। ऐसा कहे ? परन्तु यह तो घटे, ऐसा नहीं है। आहाहा!

भगवान! तेरा माल तो अन्दर ज्ञान आनन्दस्वभाव... स्वभाव.. स्वभाव.. स्वभाव है। नास्तिक को भी, इस क्षेत्र का माप कहाँ है, उसे तर्क से ख्याल नहीं कर सकता। आहाहा! कहाँ अलोक ? इस लोक-अलोक का ज्ञान कहा न यहाँ ? अलोक अर्थात् कहाँ क्या है, यह वह वस्तु ? यह उस ईश्वर की कला या लीला या वह तो कोई जगत के स्वभाव ? इस क्षेत्र के बाद क्या होगा ? अनन्त योजन। अनन्त के अनन्त वर्ग करके चला जाये ऐसे का ऐसा। लक्ष्य, लक्ष्य लग जाये, हों! बाद में क्या होगा ? फिर ऐसे गोल होगा ?

मुमुक्षु : .....अपनी सत्ता को स्वयं अनुभव करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस क्षेत्र की, इस सत्ता की अमाप की उसे खबर नहीं है, ऐसा मेरा कहना है। उसे खबर है ? परन्तु है कैसा ? कोई अचित्न्य क्षेत्र स्वभाव है! उसका भगवान जाननेवाला, उसके ज्ञान का अचिन्त्य बेहद स्वभाव है। उसकी अस्ति को स्वीकार किसने किया ? परन्तु जाना किसने ? उसकी तो उसे खबर भी नहीं। समझ में आया ? नास्तिक भी क्या है, ऐसा कहे। इसके बाद... बाद.. बाद.. बाद.. कहे क्या है ? इसके बाद कहीं आड़ी आती है ? क्या है ? फिर क्षेत्र आया अमुक पटेल का या अमुक। फिर कुछ नहीं है, लो! ऐसा होगा ? क्या है यह ? ओहोहो!

क्षेत्र। यह क्षेत्रज्ञ। उसका तो यह जाननेवाला है। वह क्षेत्र है, इसलिए नहीं। इतने

क्षेत्र को जाननेवाला अचिन्त्यक्षेत्र! क्या पीछे क्या? पीछे क्या? 'नहीं' कहीं भी नहीं आवे। अस्ति ही ऐसी की ऐसी आयेगी। अस्ति ही आयेगी 'नहीं' कहीं नहीं आयेगी। ऐसे काल में कहाँ नास्ति आयेगी? ऐसे भूतकाल, भूतकाल... बाद में.. बाद में.. बाद में.. बाद में.. कहीं 'नहीं है'-ऐसा नहीं आता। है.. है.. है.. है.. है.. है। ऐसे काल में.. है.. है.. है ही चला आयेगा। यह इसके जाननेवाले के ज्ञान में है.. है.. है.. है.. ही चला जाता है। स्वभाव ऐसा भाव है, कहीं अभाव है नहीं। शक्ति का पर के कारण अभाव, वह अलग वस्तु है। समझ में आया? यह ज्ञान का भाव, यह आनन्द का भाव, यह स्वच्छता का भाव, यह शुद्धता का भाव, यह शान्ति-चारित्र का भाव, यह वीर्य का भाव कितना? कैसा? भाव में इतना ऐसा अमाप, तथापि स्वयं ज्ञेय और ज्ञान स्वयं से हो सके ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

परिणति को स्वसंवेदन प्रमाण कहते हैं। देखो! पर्याय ली, पर्याय। प्रमाण की परिणति से ही यह प्रत्यक्ष है, दूसरे प्रकार से है नहीं। **उसी को आत्मानुभव व आत्मदर्शन भी कहते हैं।** ऊपर आ गया बहुत। **इस प्रकार के स्वरूपवाले स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष (जो कि सब प्रमाणों में मुख्य या अग्रणी प्रमाण है)...** देखो! सब प्रमाण में यही (मुख्य) प्रमाण है। अब छोड़ न! प्रमाण तो अपना प्रमाण अपने को हुआ, वह प्रमाण है। समझ में आया? भगवान ज्ञान की ज्योति सूर्य प्रभु, आनन्द का बेहद सागर, वह स्वयं ज्ञेय और अपना ज्ञान से प्रमाण हुआ, वही मुख्य प्रमाण है। समझ में आया? भगवान को पूछकर प्रमाण करना, ऐसा यह नहीं है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! प्रभु! इतना तू है, यह तुझे भान में नहीं आवे और तुझे धर्म हो, कहाँ से हो? धूल में से धर्म (होगा)? अपने से ही प्रमाण है, ऐसा उसका स्वरूप है। उस स्वरूप से कम, विपरीत, अधिक माने तो वह तत्त्व के स्वरूप से विपरीत इसकी दृष्टि है। समझ में आया?

राजा हो, वहाँ ऊँचा (मूल्यवान) खाजा तला जाता हो। पाँच सौ-पाँच सौ, दस-दस सेर का खाजा। गरीब बाघर बेचार आवे तो ऐसे देखता रहे, हों! आहाहा! अपने को मिलेगा या नहीं इसमें से? वह दरबार गुजर गये न? गुजर गये और पूरा गाँव खाजा का जीमाया था। रणवीर सिंह गुजर गये न! जामनगर। पूरा गाँव जीमाया। कीमती खाजा। उसे पाँच-दस लाख खर्च करना हो, उसे क्या हो? बेचारे गरीब व्यक्ति को (ऐसा लगे कि) हमको कब मिलेगा? भाई! पूरे गाँव को जीमना है परन्तु उसका मुँह.. गरीब व्यक्ति बाहर

हो और ऐसे ये ऊँचे के थाल को ऐसे तलाते हों न अन्दर ! आहाहा ! बापू ! गाँव का जीमन है। तुम्हें भी आयेगा परन्तु थोड़ी देर लगेगी किन्तु उसे भरोसा नहीं आता।

इसी प्रकार यह भगवान आत्मा ऐसा गाया जाता है, वह मैं होऊँगा या नहीं ? मैं होऊँगा या नहीं ? बापू ! तू होयेगा, यह यहाँ बात चलती है। कोई भी अच्छे घर में जीमन हो और बेचारा गरीब व्यक्ति आवे तो उसे ऐसा लगता है कि यह चीज़ मुझे देंगे या नहीं ? बढ़ी-घटी में से (देंगे या नहीं) ? यह तो पूरा गाँव जीमे। अच्छी-अच्छी चीज़ अमुक जानते हों या यह बड़ा अच्छा हो तो दस दिन से साठा (गुजराती मिष्ठान्न) बनते हों। दूसरे व्यक्ति को कुछ जीमने का न हो परन्तु बढ़े-घटे में थोड़ा माल मिलेगा या नहीं ? बेचारा इच्छा किया करता है। यहाँ ऐसा नहीं कहते हैं। यह तो माल तला जाता है, वह सबके भाग में आवे, ऐसा वह माल है। आहाहा ! भाई ! तू ऐसा है न, प्रभु ! आहाहा ! देखो न ! यह प्रमाण का मुख्य प्रमाण स्वयं है। इस प्रमाण में प्रमाण स्वयं है।

तथा कहे हुए गुणों से... दो बातें करनी हैं न ? एक प्रमाण से भी अग्रणी प्रमाण स्वसंवेदन से स्वयं है और वह **कहे हुए गुणों से सम्पूर्णतया प्रकट..** शिष्य ने दो बातें ली थी न ? कि इन विशेषण से तुमने बात की परन्तु कैसा गुणवाद ? ऐसा कहा था न ? यह तुमने बात की। कैसा गुणवाद ? ऐसा कहा था न ? **ऊपर कहे हुए विशेषणों से किसका और कैसा गुणवाद ?** प्रमाण सिद्ध हुए बिना (किसका गुणवाद ?) वह ऐसा है कहते हैं, सुन न ! अभी ऐसा है। **कहे हुए गुणों से...** ऐसे प्रमाण से और जितने गुण कहे (उनसे)। लोकालोक जाननेवाला गुण तेरा यहाँ है, इतना यहाँ है, हों ! अनन्त आनन्द इतना यहाँ। जो कहा है, उस प्रकार से। **कहे हुए गुणों से सम्पूर्णतया प्रकट वह आत्मा योगिजनों को एकदेश विशदरूप से अनुभव में आता है।'** धर्मी जीव को एकदेश विशद स्पष्टरूप से अनुभव में आता है। केवली को तो पूर्ण है। यहाँ तो निचले साधक की बात है। समझ में आया ? आहाहा !

कहे हुए गुणों से सम्पूर्णतया प्रकट वह आत्मा योगिजनों को एकदेश विशद.. स्पष्ट। देखा ! विशद (अर्थात्) स्पष्ट प्रत्यक्ष **अनुभव में आता है।** इसमें कहीं ऐसी कठिन भाषा नहीं है। यह तो सादी भाषा है। चार पुस्तकें सीखी हों, ऐसी समझे ऐसी भाषा है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : समझना चाहे तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे तो की बात है न!

इसे इनकार करे कि नहीं, इतना मैं नहीं। यह भी कहेंगे अब। इसे कारणान्तर की आवश्यकता नहीं है, कहते हैं। तू कारणान्तर, कारणान्तर पुकार कर रहा है। कुछ चाहिए... कुछ चाहिए.. कुछ चाहिए.. कुछ नहीं चाहिए, सुन! तू सम्पूर्ण पूरा है। तेरे लिए पर की कोई बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। भगवान का मार्ग तो सापेक्ष है न ? निश्चय से तो निरपेक्ष ही है। यहाँ तो निश्चय से बात करते हैं। निश्चय से निरपेक्ष वस्तु है। व्यवहार से हो वह जानने के लिए बात है, उसकी बात यहाँ गौण है। समझ में आया ?

दोहा – निज अनुभव से प्रगट है, नित्य शरीर-प्रमान।
लोकालोक निहारता, आतम अति सुखवान।।२१।।

इसका वान ही, इसका रूप ही सुखवाला, आनन्दवाला है। इसका वान ही आनन्द का है। आहा! ऐई! अतीन्द्रिय आनन्द इसका रूप है। आहाहा! अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रस का कन्द! और **लोकालोक निहारता,..** लोकालोक को जानना, यह तो इसका स्वरूप ही है। इतना इसका स्वभाव है, इतना प्रमाणवाला इसका स्वभाव है। अर र! भगवान के नाम से कितना कर दिया अभी। अरे! प्रभु! क्या करे ? ऐसा करते हैं ? यह द्वेष का अंश अन्दर आता है। ऐसा भगवान आत्मा, उसे ऐसा कहते हैं। स्वभाव में तो कुछ है नहीं। ऐसा कैसे कहते हैं ? ऐसा विकल्प स्वभाव में तो है ही नहीं। समझ में आया ?

निज अनुभव से प्रगट है,.. देखो! अपने अनुभव से प्रगट है। **नित्य शरीर-प्रमान..** वह इतने प्रमाण में है। लोकालोक को जाननेवाला परन्तु रहनेवाला शरीर प्रमाण, लोकालोक को जाननेवाला परन्तु रहनेवाला शरीर के प्रदेश (आकार) प्रमाण। बहुत खुलासा किया इसमें से, हों! वह वेदान्ती व्यापक कहें और अमुक कहें और अमुक कहें (वह) सब निकाल डाला। यह है, वह इस प्रकार से वस्तु है। यह अनुभव से ही प्रमाण हो सके ऐसी है। स्वानुभूत्या चकासते।

यहाँ पर शिष्य कहता है कि यदि इस तरह का आत्मा है तो उसकी उपासना कैसे की जानी चाहिए? इसमें आत्मध्यान या आत्मभावना करने के उपायों को पूछा गया है।

आचार्य कहते हैं –

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान्ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम्।।२२।।

अर्थ – मन की एकाग्रता से इन्द्रियों को वश में कर ध्वस्त–नष्ट कर दी है, स्वच्छन्द वृत्ति जिसने, ऐसा पुरुष अपने में ही स्थित आत्मा को अपने ही द्वारा ध्यावे।

विशदार्थ – जिसने इन्द्रिय और मन को रोक लिया है अथवा जिसने इन्द्रिय और मन की उच्छृंखल एवं स्वैराचाररूप प्रवृत्ति को ध्वस्त कर दिया है, ऐसा आत्मा, जिसका स्वरूप पहिले (नं० २१ के श्लोक में) बता आये हैं, आत्मा को आत्मा से ही यानि स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्ष ज्ञान से ही ध्यावे, कारण कि स्वयं आत्मा में ही उसकी ज्ञप्ति (ज्ञान) होती है। उस ज्ञप्ति में और कोई करणान्तर नहीं होते। जैसा की तत्त्वानुशासन में कहा है – 'स्वपरज्ञप्तिरूपत्वात्।'

'वह आत्मा स्वपर–प्रतिभासस्वरूप है। वह स्वयं ही स्वयं को जानता है, और पर को भी जानता है। उसमें उससे भिन्न अन्य करणों की आवश्यकता नहीं है। इसलिए चिन्ता को छोड़कर स्वसंवित्ति–स्वसंवेदन के द्वारा ही उसे जानो, जो कि खुद में ही स्थित है। कारण कि परमार्थ से सभी पदार्थ स्वरूप में ही रहा करते हैं। इसके लिए उचित है कि मन को एकाग्र कर चक्षु आदिक इंद्रियों की अपने–अपने विषयों (रूप आदिकों) से व्यावृत्ति करे।' यहाँ पर संस्कृत टीकाकार पण्डित आशाधरजी ने 'एकाग्र' शब्द के दो अर्थ प्रदर्शित किये हैं। एक कहिए विवक्षित कोई एक आत्मा, अथवा कोई एक द्रव्य, अथवा पर्याय, वही है अग्र कहिए प्रधानता से आलम्बनभूत विषय जिसका, ऐसे मन को कहेंगे 'एकाग्र'। अथवा एक कहिए पूर्वापर पर्यायों में अविच्छिन्न रूप से प्रवर्तमान द्रव्य–आत्मा वही है, अग्र–आत्मग्राह्य जिसका, ऐसे मन को एकाग्र कहेंगे।

सारांश यह है कि जहाँ कहीं अथवा आत्मा में ही श्रुतज्ञान के सहारे से भावनायुक्त हुए मन के द्वारा इन्द्रियों को रोककर स्वात्मा की भावना कर उसी में एकाग्रता को प्राप्त

कर चिन्ता को छोड़कर स्वसंवेदन के ही द्वारा आत्मा का अनुभव करे। जैसा कि कहा भी है – 'गहियं तं सुअणाणा।'

अर्थ – 'उस (आत्मा) को श्रुतज्ञान के द्वारा जानकर पीछे संवेदन (स्वसंवेदन) में अनुभव करे। जो श्रुतज्ञान का आलम्बन नहीं लेता, वह आत्मस्वभाव के विषय में गड़बड़ा जाता है।' इसी तरह यह भी भावना करे कि जैसा कि पूज्यपादस्वामी के समाधिशतक में कहा है – 'प्राच्याव्य विषयेम्योऽहं।'

'मैं इन्द्रियों के विषयों से अपने को हटाकर अपने में स्थित ज्ञानस्वरूप एवं परमानन्दमयी आपको अपने ही द्वारा प्राप्त हुआ हूँ।'

दोहा – मन को कर एकाग्र, सब इंद्रियविषय मिटाय।
आतमज्ञानी आत्म में, निज को निज से ध्याय।।२२।।

गाथा - २२ पर प्रवचन

यहाँ पर शिष्य कहता है कि यदि इस तरह का आत्मा है तो उसकी उपासना कैसे की जानी चाहिये? तो उसकी सेवा किस प्रकार करना? कोई साधन-वाधन दूसरा होगा या नहीं? भगवान की सेवा करना, परमात्मा की पूजा, दर्शन (करना), हमेशा दो-चार घण्टे भगवान के पास बैठना, दो-चार घण्टे बैठना, दो-चार-पाँच घण्टे शास्त्र-वास्त्र पढ़ना, ऐसा कुछ साधन-फाधन है या नहीं? भाई! वीतराग का मार्ग ऐसा है कि जगत को तो खबर नहीं, सुना नहीं। उसे जरा बाहर का (माहात्म्य) होवे न! आहाहा! भक्ति, नाच होवे तो आहा! वाह! वाह! लोगों को ऐसा लगे, लो! धर्म करे न! गजब धर्म कराते लगते हैं! सब भ्रम है। ऐई! 'पूजा करने का मेरा भाव जागा' वहाँ लोगों को (लगे कि) आहा! क्या आता है पहला शब्द? 'महावीर तारो रंग लाग्यो रे... रंग लाग्यो महावीर तारो।' लोगों को ऐसा लगे कि आहाहा! यह कितना धर्म करता है और कितना कराता है! भ्रमणा भारी, भाई! ऐई!

यहाँ तो दूसरा कहना है कि उसमें यदि माहात्म्य आ जाता है तो स्वभाव का माहात्म्य नहीं रहता। ऐसे माहात्म्य से धर्म प्राप्त करते होंगे और ऐसे माहात्म्य से धर्म होता

होगा ? और कहनेवाले को ऐसे भाव से उसे धर्म होता होगा ? वह तो विकल्प है, वाणी तो जड़ है। ऐई ! 'महावीर तारो रंग लाग्यो...' तो (ऐसा हो जाये) आहाहा !

मुमुक्षु : हजारों लोग बोल जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोल जाये। बात ही यह है कि इसे मूल माहात्म्य की खबर नहीं और कहाँ लिप्त हो जाता है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : नाम तो महावीर का आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : महावीर का (आवे)। परन्तु महावीर कौन सा ? महावीर यह या दूसरा ? आहाहा !

मुमुक्षु : अपने को अपना माहात्म्य घटाना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भई ! यहाँ तो जैसा है वैसी बात है। जिसका हिस्सा जितना हो, उतना हो। उसमें कोई ऐसा मान ले कि अपने आहा ! ...भारी धर्म किया और बहुत धर्म कराया ! पाँच लाख खर्च किये और यह अधिक खर्च करनेवाले हैं अभी ? अहमदाबाद का कुछ पंचकल्याणक है या नहीं ? हाथी निकालेंगे... ऐ.. हिम्मतभाई ! आहा ! भाई !

जिसे विकल्प और वाणी और पर का माहात्म्य आया, उसे स्व का माहात्म्य अन्दर नहीं आता। ओहो ! माहात्म्य स्वयं का है, वह पर का माहात्म्य है नहीं। लोगों को कठिन लगता है। भाई ! क्या हो ? समझ में आया ? कहो, अब क्या कहना होगा ? दो बातें की। आहाहा ! देखो ! यह कहते हैं।

इसमें आत्मध्यान या आत्मभावना करने के उपायों को पूछा गया है। शिष्य पूछता है। समझ में आया ? हमें ध्यान कैसे करना और आत्मा की एकाग्रता कैसे करना ?

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान्ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम्।।२२।।

ओहोहो ! **अर्थ – मन की एकाग्रता से इन्द्रियों को वश में कर..** एकाग्रता शब्द से स्वसन्मुख की एकाग्रता। इन्द्रियों को वश अर्थात् इन्द्रियों की ओर का लक्ष्य छोड़कर। **ध्वस्त–नष्ट कर दी है, स्वच्छन्द वृत्ति..** ध्वस्त–नष्ट की है स्वच्छन्द वृत्ति। स्वच्छन्द वृत्ति अर्थात् परसन्मुख के विकल्प की स्वच्छन्द वृत्ति। **ऐसा पुरुष अपने में**

ही.. भगवान ज्ञान-आनन्दस्वरूप प्रभु अपने में.. पहले नास्ति की बात की। एकाग्रता से इन्द्रियों को, स्वच्छन्द वृत्तियों को वश करे। अब अस्ति से (बात करते हैं)। **ऐसा पुरुष अपने में ही स्थित आत्मा को...**अपने में स्थित ज्ञान, आनन्द परिपूर्ण ऐसे आत्मस्वभाव को **अपने ही द्वारा..** स्वरूप की शुद्धि की निर्विकल्प धारा से ध्यावे।

अपने ही द्वारा.. आत्मा द्वारा। आत्मा अर्थात्? शुद्धभाव की पर्याय द्वारा आत्मा को ध्यावे, वह इसका उपाय है। यह तो इष्टोपदेश है। ऐसे उपदेश को इष्ट कहते हैं। कोई ऐसा कहे कि बाहर से मिलेगा, निमित्त से मिलेगा, वह उपदेश इष्ट नहीं है, भाई! भगवान का वह हितकर उपदेश है ही नहीं। ऐसा पूज्यपादस्वामी सिद्ध करते हैं। व्यवहार के विकल्प से, निमित्त से, इससे, इससे आत्मा की श्रद्धा, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अनुभव होगा, यह उपदेश इष्ट उपदेश है ही नहीं। समझ में आया? फिर बेचारे शोर मचावे न? इन्दौर में और तुम्हारे दिल्ली में। कोई दिक्कत नहीं। यह तो होने दो न। यह तो... आहाहा!

कहते हैं, भाषा क्या है? देखा? **अपने में ही..** अर्थात् स्वरूप में **स्थित आत्मा को अपने ही द्वारा ध्यावे।** निर्विकल्प द्वारा, अपने द्वारा ध्यावे। यह एक साधन, उसका अन्तर में है। बाहर में कोई विकल्प-फिकल्प साधन-फाधन आत्मा के ध्यान के लिये, मोक्ष के मार्ग के लिये है ही नहीं। आहाहा! निश्चय परम निरपेक्ष ही है। व्यवहार से ज्ञान करने के लिये बात अभी नहीं है। समझ में आया? इसकी व्याख्या विशेष आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)